शोध सार

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध का विषय 'अल्मा कबूतरी' और 'रेत' उपन्यास के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। दोनों उपन्यास क्रमशः कबूतरा जनजाति और कंजर जनजाति की अंतर्कथा को विश्लेषित करते हैं। इन उपन्यासों में कबूतरा जनजाति और कंजर जनजाति के संपूर्ण जीवन का ताना-बाना, उनका रहन-सहन, खान-पान, जीने के तौर-तरीके और उनके जीवन की त्रासदी भरी गाथा को व्यक्त करने की कोशिश की गई है। इन लेखकों की यह कोशिश कितनी सफल और असफल रही, यह प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध द्वारा बताने का प्रयास किया गया है। इन्होंने अपने शब्दों से इन जनजातियों की कथा को जिस प्रकार बांधने का जो प्रयत्न किया है, वह वास्तव में काबीले तारीफ है। मैत्रेयी पुष्पा और भगवानदास मोरवाल ने उन जनजातियों को अपने उपन्यासों का केंद्र बनाया जो सभ्य समाज की परिधि से कोसों दूर हैं और इस समाज में प्रवेश करने के लिए छटपटा रही हैं।

ब्रिटिश सरकार ने 1871 में बनाए गए 'जन्मजात अपराधी अधिनियम' के अंतर्गत इन जनजातियों से संबंधित लोगों को इनके जन्म से ही अपराधी मान लिया जाने लगा था। अक्टूबर 1936 में पंडित जवाहरलाल नेहरू इस अधिनियम को लेकर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह नियम समाज में विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। अतः इस नियम पर फिर से विचार किया जाना चाहिए और संविधान से इसको हटा देना चाहिए। किसी भी जनजाति को जन्मजात अपराधी घोषित कर देना गलत है। उनकी इस बात पर भारत आजाद होने के लगभग पांच वर्ष बाद अमल किया जाता है और 31अगस्त 1952 को निरस्त कर दिया जाता है। लेकिन इन जनजातियों के प्रति पुलिस प्रशासन और सभ्य समाज के लोगों की मानसिकता आज भी वही है जो पराधीन भारत में थी। इन जनजातियों को लेकर सभ्य समाज में भिन्न-भिन्न धारणाएँ बनी हुई हैं। इन जनजातियों से संबंधित लोग नाम से नहीं बल्कि अपने पेशे से जाने जाते हैं। चोरी करना, डकैती डालना, राहजनी, शराब बनाना और देह व्यापार करना आदि इनका पेशा माना जाता है। अब प्रश्न उठता है आखिर ये क्या करे? सभ्य समाज के लोग इन्हें अपनी परिधि में आने नहीं देते हैं, जिस कारण इन्हें समाज में व्यवस्थित रूप से जीने के लिए कोई काम नहीं मिल पाता है। इन लोगों के पास न तो इतनी भूमि ही होती है जिस पर खेती की जा सके।

आज ये लोग गांवो से शहरों की ओर अपना रुख कर रहे हैं और खाली पड़ी किसी जमीन पर अपना बसेरा बनाकर रह रहे हैं। इन्होनें अपना पुराना पेशा आज भी अपना रखा है और शहरों की छोटी-छोटी बस्तियों में धड़ले से शराब बेच रहे हैं। इनके द्वारा सड़को व गली-मोहल्लों में मार-काट व लूटपाट को अंजाम दिया जा रहा है किंतु इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने काम-धंधो व रुढ़िवादी विचारों का त्याग कर अपने बच्चो को शिक्षा दिलाने का भरपूर प्रयास कर रहें हैं। समाज आज भी इन लोगों को स्वीकार नहीं कर पा रहा है यह जीवन का कटू सत्य है। उनमें से कुछ लोग शिक्षित हैं किंतु सम्मान न मिलने के कारण अपने पुराने धंधो की तरफ जाने को विवश हैं तो कुछ लोग जाति विशेष को छुपकर समाज में बने रहने का प्रयत्न करते हुए कुछ नए कार्यो को अपना रहे हैं।

अंगेजों के गजट-गजेटियरों में उनके नाम 'अपराधी काबिले' या 'सरकश जन-जातियाँ' हैं। भारत आजाद हुए लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं किंतु स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्यधारा से बाहर इन लोगों की लड़ाई आज भी जारी है। आज ये लोग हमारे घरों की दीवारों पर कूदते-फांदते दिख जाते हैं और हम उनका अपने साधे गए निशाने से शिकार कर सुख की अनुभूति का एहसास पाते हैं। आज ये लोग चोट व ठोकरे खा-खाकर इतने कठोरहृदयी हो चुके है कि स्वयं को बचाने के लिए सामने वाले को जान से मारते हुए सोचते तक नहीं हैं।

इन दोनों उपन्यासों को पढ़ते समय मन में कई सवालों ने मेरे मन में घर बनाया और यह सोचने को मजबूर किया कि - इन लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए कौन-कौन से ठोस कदम उठाए जाए? आखिर स्वयं को सभ्य कहने वाला समाज इन लोगों को अपनी परिधि में आने की स्वीकृति क्यों नही देता? इसके क्या कारण हैं? सरकार ने इन लोगों को सभ्य समाज के घेरे में लाने के लिए क्या ठोस कदम उठाएं हैं? इनका इतिहास कितना पुराना हैं? ब्रिटिश सरकार की घोषणा से पूर्व इनका अस्तित्व क्या इन्हीं जाति विशेष के रूप में था? आज इनके हकों की मांग कौन उठा रहा है? क्या हमारा इन लोगों के प्रति कोई दायित्व बनता है या नहीं? आज समाज में इन लोगों की क्या स्थिति है? इन जनजातियों से संबंध रखने वाली महिलाओं की कोई सुधार आया या नहीं? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्होंने इन दोनों उपन्यासों को शोध विषय रूप में लेने के लिए व्याकुल किया और समाज में इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए जिज्ञासु बनाया।

समाज एक तरफ तो प्रगतिशीलता की बातें करता हुआ थकता नहीं है दूसरी तरफ अपनी रुढियों से निकल नहीं पाया। एक तरफ वह समाज है, जो सभ्य समाज की परिधि में आने के लिए झटपटा रहा है। दूसरी तरफ वह समाज है, जो इस राह पर चलने वालों के पैरो में बेड़ियाँ डालने का निरंतर प्रयास कर रहा हैं। इस लघु शोध के माध्यम से कुछ ऐसे ही मुद्दों को समाज के सामने लाने का प्रयास किया गया है। इन जनजातियों के द्वारा समाज की वास्तविक स्थिति का आंकलन किया गया है। इस शोध द्वारा यह देखने का प्रयास किया गया कि समाज इन लोगों को किस नजर से देखता है? क्या सभ्य समाज की विचारधारा में इन पिछड़े लोगों के प्रति कोई बदलाव आया या नहीं? भावी समय और परिस्थितियों के साथ संबंधित प्रश्नों को जोड़कर उनका उचित हल खोजकर प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा इन जन-जातियों का हैं। दालित वर्ग पर तो पिछले कुछ दशकों से लिखा जा रहा है किंतु इन जन-जातियों के संदर्भ में अपनी लेखनी को हथियार विरले लोगों ने ही बनाया है। मैत्रेयी पुष्पा और भगवानदास मोरवाल उन विरले लोगों में अपना स्थान बनाने में सफल हुए हैं। समाज में जब तक इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आता तब तक इन जनजातियों पर शोध की आवश्यकता बनी रहेगी। सरकार कागजों में तो प्रतिवर्ष इन जनजातियों के लिए अपने कानून में संशोधन कर सभ्य समाज की परिधि में लाने का प्रयास कर रही है किंतु प्रत्यक्ष रूप में इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। आज भी ये लोग सताए जाते हैं। इसकी स्त्रियों के साथ यौन-शोषण की घटनाएँ आए दिन शुर्खियों में रहती हैं। आज भी कई इलाके ऐसे हैं जहाँ मीडिया नहीं पँहुच सका वहाँ ऐसी घटनाएँ मात्र दिनचर्या का हिस्सा बनकर रह जाती हैं। ये सब बातें इस शोध को आधार देने में अपनी भूमिका अदा करती है।

इस लघु शोध-प्रबंध को चार अध्यायों में बांटकर प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय, समाज में होने वाली घटनाओं और अनेक समाजकीय मुद्दों को हमारे सामने लाता है। प्रथम अध्याय में दोनों रचनाकारों की रचनाओं, उनके व्यक्तित्व और समय से परिचित करवाया गया है। द्वितीय अध्याय में कबूतरा जनजाति और कंजर जनजाति के इतिहास पर नजर डाली गई है और दोनों जनजातियों का उनकी कथाओं के आधार पर भी अध्ययन किया गया है। तृतीय अध्याय, इन जनजातियों से संबंध रखने वाली स्त्रियों की दयनीय स्थिति को हमारे सामने लाता है और राजनीति की तमाम परतें खोलता चलता है। इसके अलावा इस अध्याय में समाज में व्याप्त समस्याओं और उनके कारणों को सामने लाकर उनके हल खोजने की कोशिश की गई है।

चतुर्थ अध्याय में, भाषा-शिल्प पर भी विचार करने के साथ, इन जनजातियों के धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाजों और जीने के तरीके आदि को देखकर लगा कि इन लोगों का जीने का तरीका और रहन-सहन सभ्य समाज के तौर-तरीकों से अलग हैं। इन सबका एक मूल कारण है सभ्य समाज के लोगों द्वारा इन जनजातियों से संबंधित लोगों को स्वीकार न करना। ऐसी स्थिति में इन लोगों ने अपनी अलग आधारभूमि तैयार करनी ही उचित समझी।

प्रस्तुत शोध की आधारभूमि व उसकी निर्णायक रुपरेखा तैयार करने के लिए मुख्यतः तुलनात्मक शोध प्राविधि का प्रयोग किया गया है। इस प्रविधि के अलावा अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए वर्णात्मक शोध प्राविधि का भी प्रयोग किया गया है और अंत में आलोचनात्मक शोध प्राविधि का।